अनुक्रमणिका

01.	सम्पादकीय	.....	01
02.	माया के हथियार	आचार्य सूर्यप्रताप जी	03
03.	भाग्य और पुरुषार्थ	बालकृष्ण जी	05
04.	श्रद्धा क्या है?	सुभाष जी	07
05.	यथार्थ दीपिका के अंश	अशोक एवं कर्ण जी.	09
06.	निज वेदना	प्रो. ए. वी. रामचन्द्रन	13
07.	संस्था समाचार	.....	17
08.	मानवीय संवदेना	अमरलाल संठी	21
09.	संसार को पाना.....	विद्यार्थी बृजेश	23
10.	असन्तोष	अमरलाल सेठी	25

आवश्यक सूचनायें

सभी सुन्दरसाथ को सूचित किया जाता है कि तारतम मंजरी से सम्बन्धित कोई भी शिकायत या अन्य कोई जानकारी के लिये श्री अनुज जी दिल्ली' से सम्पर्क करे या हमें ई–मेल करें।

फोन नं. 09015365451
ई–मेल– shriprannathgyanpeeth@gmail.com
प्रणाम जी

प्यारे सुन्दरसाथ जी! जिस किसी सुन्दरसाथ जी ने आर्थिक सेवा एकत्र करने हेतु सत्र 2012–2013 की रसीद बुक ले रखी हैं कृपया वे अपनी–अपनी इस सत्र की रसीद बुक जल्द ही धनराशि के विवरण सहित श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ में जमा करवाने का कष्ट करें तथा आगामी सत्र 2013–2014 की कोई भी रसीद काटने हेतु नये सत्र की रसीद बुक ज्ञानपीठ से पुनः प्राप्त करें।
प्रणाम जी

प्रकाशक :–
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट,
नकुड़ रोड, सरसावा
जिला–सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
फोन – 01331 246000, 246871
वेबसाईट :– www.shriprannathgyanpeeth.org
ई मेल :– shriprannathgyanpeeth@gmail.com

सदस्यता शुल्क

भारत में	विदेश में
वार्षिक 110 रू.	.....
आजीवन 1000 रू.	.....

लेख में प्रगट किये गये विचार लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं इनके प्रति सम्पादक, प्रकाशक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र सहारनपुर होगा।

सम्पादकीय

नाम में क्या रखा है?

यह अवधारणा किसी के समर्थन की मोहताज नहीं है कि इस ज्ञात विश्व की हमारी सामाजिक, राजनैतिक, न्यायिक और प्रशासनिक व्यवस्था, यदि कोई है, तो उससे पूर्णतया भिन्न व्यवस्था इस ब्रह्माण्ड के संचालन की है। व्यवस्था व्यक्ति, वर्ग, समाज, समर्थन और लोकप्रियता के आकलन पर यदि बदलती रहे, तो फिर यह व्यवस्था कहाँ रही ?यहां दण्ड मिलता है सबक सिखाने के लिए कि दुबारा ऐसा कृत्य न करने की धमकी देने के लिए और ऐसे कृत्यों को रोकने के लिए। ब्रह्माण्ड संचालन व्यवस्था के अंतर्गत अशुभ कृत्यों का अशुभ फल देकर सुधरने का अवसर दिया जाता है और केवल पश्चाताप ही उस कृत्य के लिए पर्याप्त माना जाता है। धर्म के क्षेत्र में भी यही अपेक्षा की जाती है कि किसी भी निर्धारित व्यवस्था के उल्लंघन पर पश्चाताप को काफी माना जाय। क्षमाशीलता और सहनशीलता ही न हो तो वह धर्म कैसे कहा जा सकता है ?आज इस सहिष्णुता की कमी धर्म सम्प्रदाय एवं पंथों में दुराव और अलगाव पैदा कर रहे हैं, जो कष्टदायी है। इसका परिणाम यह है कि जहाँ नाम, रूप, लौकिक लीला एवं धाम नहीं है, वहाँ पर भी नाम को लेकर ऐसी घोषणाएँ की जाती है जैसे उसके उद्घोषक ने प्रत्यक्ष देखा हो और लीला विलास किया हो। जहाँ बात स्वरूप की होती है, नाम और रूप निरर्थक हो जाता है।

हम विचार करें तो पाते हैं कि सभी शब्द जो नाम के द्योतक हैं, वस्तुतः एक परम सत्ता अथवा परम पुरूष के द्योतक हैं। ''गोपाल'' को लीजिए। ''गो'' के अर्थ हैं इन्द्रियां– ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ। ''पाल'' माने जो पालते हैं, पालन करते हैं। यदि आदमी केवल शरीर ही रह जाय और मन, जीव (चेतन, चितिशक्ति, भूमा चैतन्य) वर्तमान न रहे, तो वह आदमी सभी इन्द्रियों के वर्तमान रहते हुए भी कार्य नहीं कर सकता। अतः गोपाल का अर्थ हुआ परमपुरूष। ऐसे ही ''गोविन्द'' हैं। विंद का अर्थ हुआ जो किसी सत्ता विशेष के वैशिष्ट्य की स्फूर्ति और प्रगति के बारे में सहायता गरते हैं, तो मतलब तो वही हुआ।

कृष्ण। संस्कृत में ''कृष्'' धातु का अर्थ आकर्षण करना– जो सब कुछ अपनी ओर आकर्षित किए जा रहे हों, वे कृष्ण हैं। कृष्ण विश्व की चक्रनाभि को कहा गया। अन्य अर्थ है जीव का अस्तित्व बोध। ''मैं हूँ'' यह जो बोध है, उसे भी कृष्ण कहते हैं। यह आकर्षण तो केवल प्रेम का ही हो सकता है, अन्य किसी भाव से यह कहाँ

सम्भव है ?परम पुरूष को भी प्रेम का पारावार माना/जाना जाता है।

माधव! संस्कृत में ''मा'' के दो अर्थ होते हैं– एक मा माने ''ना'' और दूसरा माने ''परमा प्रकृति''। ''धव'' शब्द के भी दो माने हैं– दूध सा सफेद और पति। जिस महिला ने अपना पति खो दिया वह हुई विधवा। अतएव माधव का अर्थ हुआ परमा प्रकृति के पुरूष अर्थात् परम पुरूष।

''हरि'' जो पाप का हरण कर लेते हैं, वे हुए हरि। पापन हरति इत्यर्थे हरिः। मानो किसी आदमी ने जीवन में बहुत पाप किया परन्तु बाद में परम पुरूष का भक्त और निष्ठावान साधक बन गया। अब परम पुरूष क्या करेंगे ?परम पुरूष कहेंगे ''तुम अपने सभी पाप के फलाफल मुझे देकर शुद्ध हो जाओ''। अब भक्त तो अपना पाप देगा नहीं। परम पुरूष तो प्यार करते हैं न, वह भक्त के अनजाने ही पाप की गठरी चुरा लेंगे। चोरी माने बिना अनुमति के किसी की वस्तु ले लेना। संस्कृत में चोरी को हरण कहते हैं। अब यह हरि कौन हुए– परम पुरूष न ?

राम। ''रम'' एक धातु है जिसका अर्थ है आनन्द लेना, रमण करना। रमन्ते योगिनः यस्मिन सः एव रामः। आध्यात्मिक साधकगण परम पुरूष में ही सबसे अधिक आनन्द पाते हैं। इस प्रकार रम तो आनन्दानुभूति के सर्वश्रेष्ठ उत्स हुए। अतएव राम माने परम पुरूष। रम शब्द का दूसरा अर्थ है ''रातिः महीधरः रामः''। यहां पर राम माने सबसे प्रोज्ज्वल सत्ता यानी परम पुरूष। एक और व्याख्या है ''रावणस्य मरणं रामः''। रावण शब्द का अद्याक्षर रा और मरणं का आद्याक्षर म है– दोनों मिलकर राम हुआ। मन की प्रवृत्तियों की दशों दिशाओं में कार्य करने के नाते रावण को दशानन कहा गया। मरणं तो मृत्यु है। परम पुरूष के आश्रित होने पर रावण (मन की प्रवृत्तियां) मर जाता हैं। परम पुरूष में ही समस्त अशुभ शक्ति की मृत्यु निहित है अतः राम रावण की मृत्यु की कारण सत्ता है।

स्पष्ट होगा कि श्रद्धा और विश्वास के संबल के रूप में किसी भी संज्ञा या शब्द के सहारे साधना शुरू की जा सकती है। वस्तुतः भक्ति उपासना, समाधि, ध्यान, जाप, पूजा होनी चाहिए सर्वोच्च सत्ता की, परम पुरूष की, पुरूषोत्तम की, अक्षरातीत की, यह जानते और मानते हुए कि जहाँ नाम है वहाँ तक द्वैत का साम्राज्य है।

प्रणाम जी

एस. पी. आर्य
भूतपूर्व आई. ए. एस.
लखनऊ

सूचना

आगामी 13 मार्च से 17 मार्च तक होली के अवसर पर श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के प्रांगण में पांचदिवसीय चितवनी शिविर का आयोजन किया जा रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने वार्षिकोत्वसव पर चितवनी का प्रशिक्षक बनने की लिखित परीक्षा दी थी, वे इस कार्यक्रम में अवश्य आएं। क्योंकि उन्हें क्रियात्क प्रशिक्षण के साथ–साथ प्रशिक्षक का प्रमाण पत्र भी दिया जाएगा।

माया के हथियार

एहेना आउध अमृत रूप रस, छल
बल वल अकल।
अगिन कुटिल ने कोमल, चंचल चतुर
चपल।। रास १/

त्रिगुणात्मिका माया के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये पांचों विषय रूप ऐसे हथियार हैं, जो सामान्य प्राणी को अमृत के समान लगते हैं। इन मायावी विषयों का बल छल रूप है। इनके मोहजाल में फंसी हुयी बुद्धि इस प्रकार टेढ़ी हो जाती है कि इनकी आसक्ति इस मोहजाल से निकल नहीं पाती। इन पांचों विषय सुखों को भोगने की इच्छा रूपी अग्नि उस लुभावनी गणिका (वेश्या) के समान है, जो अपनी कुटिल और कोमल हाव–भाव तथा चंचल, चतुर एवं चपल नेत्रों के कटाक्षों से अज्ञानी मनुष्यों को बींध लेती है।

भावार्थ– सामान्यतः माया के हथियारों में इन १३ पदार्थों (अमृत, रूप, रस, छल, बल, वल, अकल, अगिन, कुटिल, कोमल, चंचल, चतुर, चपल) की गणना की जाती है, किन्तु ऐसा करना अनुचित है क्योंकि माया के विषय रूप हथियार तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ही हैं। शेष कुटिलता, कोमलता, चंचलता, चतुरता और चपलता इन हथियारों के गुण हैं।

वस्तुतः माया जड़ पदार्थ है उसमें कुटिलता, कोमलता, चंचलता तथा चतुरता के लक्षण नहीं आ सकते ये लक्षण केवल चेतन प्राणी में घटित हो सकते हैं। यहां आलंकारिक रूप में रूपक अलंकार के माध्यम से माया की तुलना उस गणिका (वेश्या) से की गयी है जो अपनी अति मीठे शब्दों, सुखद स्पर्श, आलिंगन आदि, मनमोहक रूप, अति प्रिय भाषिता (रस) तथा सुगंध के द्वारा बुद्धिमान व्यक्तियों को भी अपने मोहजाल में फंसा लेती है। वह अपने चंचल तथा चपल नेत्रों से निकलने वाले आसक्ति की बाणों से ज्ञानी पुरूष को भी बेध देती है, किन्तु उसके हृदय में धन एवं विषय सुखों की प्राप्ति की कुटिलता होती है, पवित्र प्रेम नहीं।

यहां माया की तुलना गणिका से करने का आशय यह नहीं समझना चाहिए कि नारी जाति की निंदा की गयी है। भारतीय संस्कृति तो मनु के उस कथन में विश्वास करती है कि– ''यत्र नार्यः तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' मनु/

अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता रमण करते हैं। वैदिक नारी और गणिका के विचारों में धरती–आकाश का अन्तर होता है। गणिका जहां शारीरिक और मानसिक रूप से भोग की प्रतिमूर्ति होती है, वहीं भारतीय नारी तप, त्याग, करूणा और

स्नेह की प्रतिमूर्ति होती है। यही नारी दिव्य सन्तति, समाज और राष्ट्र का निर्माण करती है। इसके बिना मानव जीवन की कल्पना ही नही हो सकती। इसलिये तो वेद ने कहा है– ''नारी निर्मात्री भवति''

किन्तु भोगनीय नारी (गणिका) से दिव्य समाज और राष्ट्र निर्माण की कल्पना नही की जा सकती। यथार्थतः इस चौपाई में शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध आदि पंच विषयों के समष्टि रूप गणिका के रूपक अलंकार के माध्यम से माया (प्रकृति) के स्वरूप को दर्शाया गया है, जिसके बंधन में जीव फंसा रहता है। अज्ञान में भटकता हुआ जीव इन विषय सुखों को ही अमृत मानता है और उसके कारण वह परमात्मा की सानिध्यता को प्राप्त नहीं कर पाता है। नीतिकार चाणक्य ने भी इसी तथ्य की ओर संकेत किया है कि ''रमणी के मोह पाश में बंध हुआ मानव उसके वियोग को सहन नहीं कर पाता है और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उसे उससे प्राप्त होने वाला क्षणिक सुख ही अमृत तुल्य प्रतीत होता है।''

इस चौपाई के प्रथम चरण में रूप, रस का तात्पर्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध से है। यहां पांचों विषयों को संक्षिप्त रूप में रूप, रस कहकर सम्बोधित किया गया है। ये विषय ही सामान्य प्राणी को अमृत के समान प्रतीत होते हैं और वह इन्हीं के लिये जीता–मरता है।

यहां ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि कुटिल, कोमल, चंचल, चतुर, चपल आदि शब्द विशेष्य (भाव वाचक संज्ञा) हैं विशेषण नहीं। कुटिलता, कोमलता, चंचलता, चतुरता, चपलता आदि शब्द विशेषण हैं।

आचार्य सूर्यप्रताप जी
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ,
सरसावा

शान्त व्यक्ति ही सुखी....

गत अंक से आगे.....

श्री कृष्ण आगे कहते हैं अयुक्त पुरुष में भावना नहीं होती। यहां 'भावना' से कृष्ण का तात्पर्य उस भावना से नहीं है जो हम सब में होती है क्योंकि हम सब अयुक्त व्यक्ति ही हैं क्योंकि हमारी भावना बाहर से युक्त है, 'मेरे–तेरे' से बंधी हुई है। श्री कृष्ण जिस भावना की बात कर रहे हैं। वह भीतर का सहज स्थायी भाव है, स्वयं की स्फुरणा है। दूसरे से युक्त होने से जो भाव उठता है वह भ्रम है भावना नहीं। कहने का तात्पर्य है कि भावना उस व्यक्ति में उठती है जो अपने में संयुक्त है, अपने से युक्त है। इसी को योग को उपलब्ध होना कहते हैं। अयुक्त अर्थात् वियुक्त– जो अपने से जुड़ा हुआ नहीं है क्योंकि वियुक्त सदा दूसरों से जुड़ा हुआ नहीं है क्योंकि वियुक्त सदा दूसरों से जुड़ा रहता है। वह किसी का पिता है, किसी का पुत्र है, किसी का मित्र है, किसी का शत्रु है, किसी का मालिक है किसी का नौकर है। लेकिन खुद कौन है इसका उसे कोई पता नहीं होता। श्री कृष्ण जिस भावना की बात कर रहे हैं वह तभी पैदा होती हैजब कोई स्वयं से जुड़ता है। तो जो दूसरों से जुड़ता है उसमें भावना नहीं होती–एक। जो दूसरों से जुड़ा होता है वह सदा अशानत होता है–दो। दरअसल शानित का अर्थ है 'आन्तरिक समरसता। अगर बाहर का सब चला भी जाए, मिट भी जाए फिर मैं जो हूं काफी हू, जरुरत से ज्यादा काफी हूं, ऐसा युक्त पुरुष शान्त हो जाता है। जो अयुक्त है अर्थात् बाहर से युक्त है उसको बाहर से कितने ही अनुकूल भोग आदि मिल जाएं पर उसके हृदय की हलचल नहीं मिट सकती अतः वह शान्त नहीं होता अर्थात् वह सुखी नहीं हो सकता। सन्त तुलसीदास जी कहते हैं–

सात दीप नव खंड लौं, तीन लोक जग माहिं।
'तुलसी' शान्ति समान सुख, अपर दूसरों नाहिं।।

सातों द्वीपों, नवों खंडों और तीनों लोकों में घूम फिर कर देख लो, किन्तु शान्ति के समान कहीं भी कोई दूसरा सुख मिलने का नहीं।

प्रणाम जी

भाग्य और पुरुषार्थ

संसार के अधिकतर मनुष्य भाग्य के सहारे जी रहे हैं। वे बचपन से लेकर वृद्धावस्थापर्यन्त भाग्य की सराहना करते हैं या दोष देते हैं। ऐसा करते–करते उनका जीवन बीत जाता है। इसमें उनका कोई दोष नहीं है, दोष तो उन लोगों का है, जो भाग्य के भरोसे जीने के लिये प्रेरणा देते हैं। अधिकतर लोगों का कथन होता है कि– भाग्य में होगा तो सुखी होंगे, धनी होंगे, समृद्ध होंगे, सफल होंगे। लेकिन यदि सही दृष्टि से देखा जाय तो क्या इनका कथन गलत है ?

यदि गलत है तो सदियों से चली आ रही विचारधारा का खण्ड हो जाता है, क्योंकि सुना और देखा गया है कि भाग्य के कारण कोई मनुष्य भिखारी से कई बड़े–बड़े पदों में चला जाता है। परन्तु दूसरी विचारधारा कहती है कि भाग्य के भरोसे बैठने वालों का बेड़ा गर्क हो जाता है। यदि भाग्य के भरोसे रहकर कुछ न करें, आलस्य प्रमाद से युक्त होकर यदि कहते फिरें के ''हमें तो कुछ करने की जरूरत ही नहीं है, सब भाग्य कर देता है'' तो वह अवश्यमेव नष्ट हो जायेगा। इस उद्धरण से सिद्ध होता है कि भाग्य से सफल होने वाले अपवाद में मिलते हैं।

यह संसार विचित्र है, यहां भाग्य के सहारे जीने वाले के साथ–साथ पुरूषार्थ करने वाले भी मिलते हैं। उनका कथन है कि ''पुरूषार्थ करने वाले ही सफल और समृद्ध होते हैं।'' यदि उनका कथन मान लिया जाए तो भी संतुष्टी नहीं मिलती है। क्योंकि हमारे नजर में कई ऐसे लोग होते हैं जो दिन रात मेहनत करते हैं, अपने लक्ष्य को पाने के लिए खून–पसीना एक कर देते हैं, परन्तु वही सबसे ज्यादा असफल होते हैं। आखिर क्यों वे पुरूषार्थ करने वाले असफल हो रहे हैं ?उन्होंने परिश्रम में कोई कमी भी तो नहीं रखी थी। इसको अपवाद के रूप में नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि संसार के ज्यादातर लोगों के साथ यही घटना घट रही है। कई लोग अपने पूर्वजन्म में किये गये कर्म को दोष देकर बैठे जाते हैं, और कई लोग विधाता को।

आखिर एक सामान्य व्यक्ति दुविधापूर्ण विचारधारा में उलझकर रह जाता है। वह सोचता है कि मैं भाग्य के सहारे जिऊं या पुरूषार्थ करके। हम भी उस व्यक्ति की तरह उलझकर बैठे तो नहीं है ?यह प्रश्न खड़ा हो जाता है। इसको हल करने में एक श्लोक सहायक सिद्ध हो सकता है–

उद्योगिनं पुरूषं सिंहमुपैति लक्ष्मी, दैवेन देयमेन्ति कापुरूष वदन्ति।

दैवम् निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।

उद्योगी पुरूष के पास तो लक्ष्मी (धन) की कोई कमी नहीं होती है। भाग्य देगा, ऐसा सोचकर बैठने वाला तो कायर पुरूष होता है। पुरूषार्थ करने पर भी यदि कार्य सिद्ध नहीं होता है तो किसको दोष दिया जा सकता है ?परिश्रम करते रहिए, भाग भी आपका साथ देने लगेगा। कई बार पुरूषार्थ करने पर असफलता भी मिलती है, उससे निराश नहीं होना चाहिए।

इन बातों से यह समाधान निकाला जा सकता है कि मनुष्य को दिन–रात परिश्रम करना चाहिए, साथ में परिश्रम करबे भाग्य के भरोसे भी बैठना चाहिए क्योंकि यदि हम यह सोचे पुरूषार्थ करने पर तुरन्त उसका प्रतिफल मिलेगा तो यह गलत है। यदि व्यक्ति ऐसा करने लगा तो वह दुःखी हो जायेगा, उसे लगने लगेगा कि संसार में पुरूषार्थ का कोई महत्व नहीं है। हो सकता है कि वह व्यक्ति मेहनत करता हो और फल आने के समय में चूक जाता हो।

इसको उक उदाहरण से समझा जा सकता है– एक गांव में एक गरीब किसान रहता था। वह बहुत मेहनती, पुरूषार्थी और साथ में ईमानदार भी था। उसकी आर्थिक स्थिति बहुत नाजुक थी। ऐसी स्थिति को देखकर एक बार पार्वती ने शिव जी से कहा– उसको आप धन क्यों नहीं देते हैं ?शिव जी ने कहा कि उसके पास धन आ सकता है पर धन आने के समय में उसकी बुद्धि और अवसर को पहचानने की क्षमता नष्ट हो जाती है।

पार्वती ने कहा – आप उसको धन तो दीजिए, फिर आप मुझे कहना। शिव जी ने ऐसा ही किया। किसान एक रास्ते से कहीं जा रहा था। उसके सामने हीरे–मोतियों से भरी हुई एक थैली डाल दिया। उसी समय उस नादान के मन में विचार आया कि मैं आंखें बन्द करके चलता हूँ, पता नहीं कैसा लगता है ?आज तक तो चला नहीं हूँ। वह आंखें बन्द करके चलने लगा और उसका पैर उस थैली में टकराया, फिर भी उस किसान ने उस थैली को नहीं देखा और चुपचाप आगे जाकर आंखें खोला।

आप इसको बदकिस्मती या अवसर पहचानने की क्षमता की कमी कहेंगे, दोनों ही अपनी–अपनी दृष्टी में सही है। इन सभी बातों की विवेचना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य को अपने जीवन में लगातार पुरूषार्थ करते रहना चाहिए और जो बातें अपने वश में नहीं है, उसको भाग्य के भरोसे छोड़ देना चाहिए और साथ में यह भी देखना चाहिए कि किसान की तरह कहीं अवसर हमारा द्वारा तो नहीं खटखटा रहा है ?कभी निराश होकर हाथ पर हाथ बांधकर नहीं रहना चाहिए। कोशिश करते रहना चाहिए, करते रहना चाहिए।

लहरों से डरकर नौका पार नहीं होती।

कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।।

विद्यार्थी बालकृष्ण
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ,
सरसावा

श्रद्धा क्या है?

श्रद्धा शब्द श्रत् और धा– इन दो शब्दों से मिलकर बनता है। श्रत् का अर्थ है सत्य और धा का अर्थ है धारण करना। मनसा वाचा कर्मणा, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित सत्य के धारण करने का नाम श्रद्धा है।

श्रद्धा मानव जीवन की नींव है। इसके बिना जीवन रूपी भवन खड़ा नहीं हो सकता। आंखों के बिना देखा नहीं जा सकता और कानों के बिना सुना नहीं जा सकता। जिन व्यक्तियों ने संसार में उन्नति की, उनके जीवन में श्रद्धा ओत–प्रोत थी। मानव जीवन में श्रद्धा का वही स्थान है जो दीपक में तेल। यदि दाह शक्ति न रहे तो हम उसे अग्नि नहीं कह सकते, समुद्र में तरंगे न हो तो हम उसे समुद्र नहीं कह सकते और जिस नवयुवक में जोश नहीं हो उसे जवान नहीं कह सकते। जिस प्रकार पत्र, पुष्प और फल से रहित वृक्ष ठूंठ होता है, उसी प्रकार श्रद्धा रहित मनुष्य भी ठूंठ के समान ही होता है।

वर्तमान समय में अधिकांश लोग श्रद्धा से खाली हैं, यही कारण है कि आज मानव नहीं रहा, दानव हो गया है। श्रद्धा की कमी के कारण आज पुत्र पिता का अनादर करता है। शिष्य गुरूओं का तिरस्कार करते हैं। इसके विपरीत प्राचीन काल में मनुष्यों को श्रद्धा का पुतला बनाया जाता था। आचार्य शिष्यों को इस प्रकार की शिक्षा दिया करते थे– मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।। तै. ३.११.१२

अर्थात् माता का आदर करो, पिता की सेवा करो, गुरूओं और अतिथियों का आदर करो, ऐसी शिक्षा के कारण ही हम प्राचीन काल के महामानवों के जीवनों को माता, पिता और गुरूओं के लिए श्रद्धा से ओत–प्रोत पाते थे।

मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्रजी के राजतिलक की घोषणा हो चुकी है, परन्तु दूसरे दिन दृश्य बदल जाता है। प्रातःकाल कैकेयी श्री राम को बुलाती है। जब श्री राम महल में पहुँचते हैं, तब अपने पिताजी को दीन और कातर अवस्था में देखकर माता कैकेयी से उसका कारण पूछते हैं। कैकेयी के यह कहने पर कि– यदि तुम महाराज की आज्ञा को स्वीकार करो तो मैं तुम्हें बताऊँ। श्री राम चन्द्र जी को बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने कहा–

अहो धिक् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।

अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयम् अपि पावके।।

भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं मज्जेयम् अपि चार्णवे।। वा.रा. अयो. १८/२७–२८

अर्थात् हां, मुझे धिक्कार है। हे देवी! तुम्हें ऐसी बात करनी उचित नहीं। अन्य बातों का तो कहना ही क्या, महाराज की आज्ञा से तो मैं अग्नि में भस्म होने के लिए तैयार हूँ, हलाहल विष का पान कर सकता हूँ तथा समुद्र में छलांग लगा सकता हूँ। यह है पिता

के प्रति श्रद्धा।

महाभारत के भीषण संग्राम में अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त गया। जब अर्जुन ने यह समाचार सुना तब उन्होंने अपने पुत्र को मारने वाले जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की। जयद्रथ को मृत्यु से बचाने के लिये आचार्य द्रोण ने शकट व्यूह की रचना की। धनुर्धारी अर्जुन युद्ध करते हुए गुरू के सम्मुख पहुँचे और गुरू के साथ भीषण संग्राम किया। योगेश्वर श्री कृष्ण ने यह देखकर कि यदि अर्जुन यहीं लड़ता रहा तो जयद्रथ वध असम्भव है, अर्जुन से कहा– ''हमारा अधिक समय यहीं न लग जाए, अतः द्रोणाचार्य को छोड़कर आगे चलो।'' अर्जुन ने कहा– ''जैसी आपकी इच्छा'' तत्पश्चात् वे आचार्य की परिक्रमा करके लौट पड़े। यह देखकर द्रोणाचार्य ने कहा– '' पाण्डुनन्दन! तुम इस प्रकार कहाँ जा रहे हो ?तुम तो रणक्षेत्र में शत्रु को पराजित किये बिना कभी नहीं लौटते थे ?

यह सुनकर अर्जुन ने कहा–

गुरूर्भवान् न मे शत्रुः शिष्यः पुत्रसमोऽस्मि ते।

न चास्ति स पुमांल्लोके यस्त्वां युधि पराजयेत्।। महा. द्रोण पर्व ११/३४

ब्रह्मन्! आप मेरे गुरू हैं, शत्रु नहीं हैं, मैं आपका पुत्र के समान प्रिय शिष्य हूँ। इस संसार में ऐसा कोई पुरूष नहीं है जो आपको पराजित कर सके।

यह है शिष्य की गुरू के प्रति श्रद्धा, युद्ध हो रहा है, परन्तु श्रद्धा में तनिक भी कमी नहीं है। इसी भाव से वेद में कहा गया है – श्रद्धया विन्दते वसु। ऋग्वेद १०/१५३/४

अर्थात् श्रद्धा से धन मिलता है। ज्ञान धन, बुद्धि धन, विद्या धन, विज्ञान धन, बलधन और ऐश्वर्य सब कुछ श्रद्धा से ही मिलता है, आध्यात्मिक धन भी श्रद्धा से ही प्राप्त होते हैं। योग दर्शन में भी परमात्मा–प्राप्ति के लिए श्रद्धा को सबसे पहला स्थान दिया गया है। इसका वर्णन करते हुए लिखा है– श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्। यो.द. १/२०

सत्य के धारण करने का नाम श्रद्धा है। गीता में कहा है– श्रद्धामयोऽयं पुरूषः। १/७३ ।मनुष्य स्वभाव से ही श्रद्धालु है। यदि मनुष्य प्रत्येक बात में तर्क करने लगे तो जीवन ही असम्भव हो जाए। इसीलिए महर्षि व्यास जी ने लिखा है– तर्कं प्रतिष्ठानात्। वे.द. २/१/११

अर्थात् यदि हम प्रत्येक बात को तर्कतुला पर तौलने लग जाएं तो हम एक छोटी सी क्रिया भी पूरी न कर सकें। तर्क मस्तिष्क की वस्तु है और श्रद्धा हृदय की भावना। दोनों के मेल से ही जीवन में उन्नति और सफलता प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं। अथर्ववेद में कहा है श्रद्धा प्राणः। अर्थात् श्रद्धा मानव जीवन का प्राण है।

इति पूर्णम्

विद्यार्थी सुभाष
श्री प्राणनाथ, ज्ञानपीठ,
सरसावा

यथार्थ दीपिका के अंश

सत्य सर्वथा एक होता है, किन्तु अपने बौद्धिक एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों के स्तर में विभिन्नता के कारण एक ही चौपाई के अलग–अलग अर्थ लगाए जा सकते हैं, इससे विचारधारा में भी भिन्नता दिखाई पड़ने लगती है। यदि हम अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सुनने का प्रयास करें और निष्पक्ष हृदय से उस पर विचार करें, तो वास्तविक सत्य का अवश्य बोध होगा और वैचारिक मतभेद का कोई नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

प्रायः यही देखा जाता है कि प्रत्येक विचारधारा का अनुयायी अपने विचारों को ही सत्य मानता है और दूसरे के विचारों पर पक्षपातपूर्ण ढंग से कुतर्कों के द्वारा प्रहार करता है। वह यह भूल जाता है कि सत्य के सूर्य को कभी भी पूर्ण रूप से आच्छादित नहीं किया जा सकता है। यद्यपि असत्य के राही को यह आभास अवश्य होता है कि मैं असत्य का पक्ष ले रहा हूँ , किन्तु अपने शुष्क बौद्धिक ज्ञान के अहं में वह जितना प्रयास झूठ को प्रचारित करने में लगाता है, उतना प्रयास यदि निष्पक्ष हृदय से सत्य को जानने में लगाता, तो सम्भवतः वह आध्यात्मिक आनन्द की गहराइयों में डूब रहा होता।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रश्नोत्तर के माध्यम से सत्य और असत्य के निरूपण का प्रयास किया गया है जिसकी झलक इस प्रकार है–

प्रश्न १– तारतम वाणी के इन कथनों से सिद्ध होता है कि जोश और आवेश एक ही है–

दो भुजा सरूप जो स्याम, आतम अछर जोस धनी धाम। प्र.हि. ३७ / ३०

सो सुरत धनी को ले आवेस, नन्द घर कियो प्रवेस।। प्र.हि. ३७ / २९

जोगमाया में खेल जो खेले, संग जोस धनी के भेले।

जोगमाया में बाढ़यो आवेस, सुध नहीं दुख–सुख लवलेस।। प्र.हि. ३७ / ४०

उत्तर– उपरोक्त चौपाइयों के आशय को समझने के लिये हमें सर्वप्रथम जोश और आवेश के वास्तविक स्वरूप को समझना होगा। परमधाम से बाहर कालमाया एवं योगमाया में अक्षरातीत अपने आवेश स्वरूप से ही लीला करते हैं, किन्तु उसका प्रकटीकरण जोश के द्वारा होता है। इस प्रकार आवेश शक्तिमान है, तो जोश उनकी शक्ति। जहां अक्षरातीत का आवेश होगा, वहां जोश अवश्य होगा, किन्तु जहां जोश होगा वहां आवेश का होना अनिवार्य नहीं। अक्षरातीत का आवेश मात्र निस्बत के स्वरूपों (अक्षर ब्रह्म, महालक्ष्मी, श्यामा जी एवं सखियों) के साथ ही लीला कर सकता है। ईश्वरी सृष्टि पर अक्षरातीत का आवेश कदापि लीला नहीं कर सकता। आवेश अक्षरातीत का निजस्वरूप है, जबकि धनी का जोश अक्षरातीत की शक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है। इसे खुलासा ग्रन्थ में इस प्रकार कहा गया है–

जबराईल जोस धनीय का, रुद्र तामस अजराईल। खु. १२/४५

से स्पष्ट होता है कि धनी के जोश को जबराईल कहते हैं। यहां जोश से तात्पर्य शक्ति से है। अक्षरातीत का सत अंग अक्षर ब्रह्म उनकी सत्ता या शक्ति का स्वरूप है। सनद के प्रकरण ३७ में ५ फरिश्तों की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म से बताई गयी है।

पांच फिरश्ते नूर से, खड़े मिने हुकम।

पांव पल में पैदा करें, ऐसे कई इण्ड आलम।।

यामें एक रसूल संग, ए जो जबराईल।

सो नूर से आवत रूहन पर, हकें भेज्या रोसन वकील।।

या विध उपजे नूर से, इन से सब विस्तार।

थिर चर चौदे तबकों, हुआ खेल कुफार।। सनद ३७/२,३,१२

उपरोक्त चौपाइयों से यह स्पष्ट होता है कि अक्षर से उत्पन्न होने वाले पांच फरिश्तों में जिब्रील भी है। यद्यपि अक्षर के अनादि होने से जिब्रील और अस्राफील भी अनादि ही हैं, किन्तु इनका मूल सम्बन्ध अक्षर से होने के कारण इन्हें अक्षर से उत्पन्न हुआ कहा गया है। अक्षरातीत की लीला का सम्बन्ध आवेश से है। तारतम वाणी में कहा गया है कि– हिरदे बैठ केहेलाया साक्षात।'' जहां साक्षात् विराजमान होकर लीला करने की बात आती है, वहां आवेश स्वरूप ही कहा जायेगा, जोश स्वरूप नहीं, क्योंकि जिब्रील का मूल घर योगमाया का ब्रह्माण्ड है। वह युगल स्वरूप के नख से शिख तक की शोभा का वर्णन कैसे कर सकता है ?

श्यामाजी के जिस स्वरूप की शोभा को स्वयं अक्षर ब्रह्म ने देखा नहीं, उनके एक–एक अंगों की शोभा का वर्णन कर पाना जबराईल के लिये कैसे सम्भव है ?

इस सम्बन्ध में मारिफत सागर में कहा गया है–

जबराईल जबरूत से, याकी असल नूर मकान।

सोहोबत करी महंमद की, तो ल्याया हक फुरमान।।

जो रूह अर्स मुहम्मद की, तिनको न सक्या पेहेचान।

तो न आया बड़े नूर में, छोड़या न नूर मकान।।

चल न सके जबराईल, रह्या हद जबरूत।

मासूक कह्या महंमद को, तो पोहोंच्या बका हाहूत।।

सो ए वतन रूह मोमिनों, जित पोहोंच्या न जबराईल।

एक महंमद संग आखिरी, बीच पोहोंच्या असराफील।। मारिफत सागर ५/१६–१६

उपरोक्त चौपाईयों में यह बात दर्शायी गई है कि अरब में आने वाले मुहम्मद अर्थात् अक्षर की आत्मा को जब जबराईल नहीं पहचान सका, तो उसे अक्षरातीत का स्वरूप कैसे कहा जा सकता है ?सर्वरस सागर, नूर सागर तथा रस सागर तीनों यमुना जी से पूर्व दिशा में पड़ते हैं। जब इन तीनों सागरों में

युगल स्वरूप और सखियों की लीला होती है, तो स्वाभाविक है कि वहां वहदत और खिल्वत का अखण्ड साम्राज्य है। उसमें योगमाया की किसी भी वस्तु का प्रवेश कर पाना सम्भव ही नहीं है। इसलिये ''छोड़या न नूर मकान'' का तात्पर्य सतस्वरूप से ही लिया जाएगा।

यदि यह कहा जाए कि श्रीमुखवाणी में सत्स्वरूप शब्द ही नहीं है तो क्या सबलिक और अव्याकृत शब्द हैं?इस मानसिकता में तो क्या योगमाया के चारों पादों का अस्तित्व ही नहीं होगा?वास्तविकता यह है कि सत्स्वरूप शब्द वाणी में कई बार आया है। कलश हिन्दुस्तानी में कहा गया है कि –

सुपन सत सरूप को, तुम कहोगे क्यों कर होए। क.हि. २४/२८

मारिफत सागर के ५/१८ के चौथे चरण में 'रह्या हद जबरूत' का तात्पर्य सत्स्वरूप से ही लिया जाएगा।

परमधाम पूर्णातिपूर्ण है, उसमें कालमाया या योगमाया की कोई भी वस्तु प्रवेश नहीं कर सकती है। इस बात की पुष्टि मारिफत सागर के इन कथनों से भी होती है, जिनमें कहा गया है कि जबराईल, असराफील और अजाजील, तीनों अक्षर के फरिश्ते अर्थात् शक्तियां हैं और तीनों ही परमधाम नहीं जा सकते हैं।

ना तो असराफील है नूर का, क्यों फिरस्ता सके आगे जाए।

पर मगज मुसाफें नूर में, रूह महंमद लिया मिलाए।।

ए नूरी तीनों फिरस्ते, इनों की असल एक।

ए किया महंमद मोमिनों वास्ते, हक इलमें पाइए विवेक।। मा. सा. ५/२४,२५

जागनी ब्रह्माण्ड में श्रीमहामतिजी के धाम हृदय में अक्षरातीत के चरण कमलों की सानिध्य से असराफील अर्थात् अक्षर की जागृत बुद्धि को परमधाम की लीला का ज्ञान प्राप्त हुआ। इसे ही असराफील का परमधाम पहुँचना कहा गया है। अर्थात् वह ज्ञान दृष्टि से पहुँचा है, साक्षात् नहीं।

असराफील फिरवल्या, अर्स अजीम के माहें।

और जबराईल जबरूत की, हद छोड़ी नाहें।। मा. सा. १७/३०

तारतम वाणी में जहां भी जिब्रील के द्वारा यमुनाजी तक पहुँचने का वर्णन किया गया है, वह यथार्थ में ज्ञान दृष्टि से ही पहुँचने का वर्णन है, साक्षात् नहीं। इस सम्बन्ध में कलश हिन्दुस्तानी का यह कथन देखने योग्य है–

मेरी संगते ऐसी सुधरी, बुध बड़ी भई अक्षर।

तारतमें सब सुध परी, लीला अन्दर की घर।। २३/१०३

यदि महामतिजी के धाम हृदय में अक्षर ब्रह्म की बुद्धि को प्रवेश नहीं मिलता, तो उसे परमधाम की लीला का कोई बोध नहीं हो सकता था। इसलिये तो अक्षर ब्रह्म की जागृत बुद्धि वि.सं. १७३५ तक यह प्रतीक्षा कर रही थी

कि कब खिल्वत, परिक्रमा, सागर व सिनगार की वाणी उतरे और मैं परमधाम की लीला का रसपान करूँ।

धनी जी मेरे ध्यान तुमारे, बैठे बुधजी बरस सहस्र चार।

छे सै साठ बीता समें , दुनिया को भयो आचार।। कि. ५३/१

क्रमश

16 पृष्ठ का शेष.....

कि सामूहिक प्रयास के अपने फायदे होते हैं, जब कि हर कोई आपस में सहायक हों और अगुए और अनुयायी बराबर हों, न कि एक समूह जिनमें कुछ अगुए और अनुयायी दास हों। मार्गदर्शन के लिए आध्यात्मिक ज्ञानवाले जानकार व्यक्तियों की उपस्थिति हो सकती है लेकिन अपने अधीन बनाने वालों की नहीं। मैं इन विवादों से खुद को दूर रखना चाहता हूँ और अपने विनम्र तरीके से आगे बढ़ना चाहता हूँ और इस संप्रदाय के सभी को गौरव देने के लिए तैयार हूँ। मैं केवल श्रीराजजी की दया, कृपा और प्रेम की ही कामना करता हूँ और निवेदन करता हूँ कि इस दुनिया के चतुर और दुष्ट तरीकों से बचाने के लिए उनका सुरक्षा कवच मेरे ऊपर सदा बना रहे।

प्रो. ए.वी. रामचन्द्रन
बड़ोदराः

22 पृष्ठ का शेष.....

उदेपुर का साथ पहाड़ों मिने, हुआ विलाप करनहार।।

जब कृपाराम रोते बिलखते, उदयपुर के सुन्दरसाथ का पत्र लेकर आए और रो–रोकर सारा समाचार सुनाया। यह सुन महामति बड़े दुःखी हुए। उन्होंने मूल मिलावे में ध्यान कर सुन्दरसाथ के कष्टों की निवृत्ति के लिए मूल स्वरूप श्री राज जी से प्रार्थना की। उनके कष्टों की निवृत्ति के लिए किरंतन ग्रन्थ के छः प्रकरण उतरे। यह वाणी श्री राज जी के आवेश से अवतरित हुई। श्री मुखवाणी धनिये कही। अहंकार का नामोनिशान नहीं था उनमें।

किसी के प्रति संवेदना जताने के बाद हमें अहंकार नहीं करना चाहिए, नहीं तो यह विकार बन जाता है और आप के व्यक्तित्व को नष्ट कर देता है। वास्तविक बोध तो इस आत्मा के स्वरूप का दर्शन है, जो सदा सत्य एवं शाश्वत है, नित्य है। यह श्री राज जी की देन है। समर्थता तो बहुतों के पास होती है पर संवेदनशील हृदय सभी के पास नहीं होता।

मैं देखता हूं कि आज हमारे समाज में दुःख–सुख बांटने वाली संवेदना रूपी विभूति सूखती चली जा रही है। इसके अभाव में मनुष्य स्वार्थ केन्द्रित और अहं केन्द्रित होता चला जा रहा है। यदि सुन्दरसाथ की मुरझाई जिन्दगी को फिर से हरा–भरा करना है तो हम सभी को संवेदनशीलता रूपी जल से सींचना होगा। आओ अपने सभी विरोधों, प्रतिकारों और मतभेदों को दरकिनार कर संवेदनशील बनें। आप अनुभव करेंगे कि आपके हृदय में आत्मीयता हिलोरें लेती दिखेंगी।

प्रणाम जी

अमरलाल सेठी
अबोहर
09463233945

मेरी निज वेदना

परमधाम की रूपाकृति, निजानंद परम्परा व सम्प्रदाय

परमधाम में स्थित रूपाकृति के बारे में दो विचारधाराएं प्रचलित हैं– एक अद्वितिय श्री राज जी के रूप में और दूसरी श्रीकृष्ण के रूप में। यह जो दूसरा विचार है, वह श्रीजी के कुछ वर्षों के बाद प्रचलन में आया। इसके फलस्वरूप ''कृष्ण प्रणामी'' के रूप में परम्परा के एक नए नाम की शुरूआत हुई।

श्री राज जी की प्रत्यक्ष कृपा और खिंचाव से संगठन/परम्परा में प्रवेश करने के बाद मैं श्री बीतक साहिब और श्री कुलजम स्वरूप के अध्ययन में लग गया। मैंने इन धर्मग्रन्थों से यह ज्ञान प्राप्त किया कि एक सार्वभौमिक सत्य या सर्वोच्च परमात्मा है, जो परमधाम में युगलस्वरूप श्री राज–श्यामाजी अपनी सहचरी बारह हजार सखियों के साथ दीप्तिमान स्वरूप में प्रकट हैं। श्री राज–श्यामाजी के स्वरूप और श्रृंगार के पठन और श्रवण में मुझे कभी भी श्रीकृष्ण के श्रृंगार के अथवा वस्त्र से किसी समानता का आभास नहीं मिला। मैं चकित रह गया, जब मुझे कृष्ण–प्रणामी नामक समूह के अस्तित्व और उनके द्वारा उद्घोषित श्री राज जी के रूप में श्रीकृष्ण और श्यामाजी केरूप में राधा की अवधारण के बारे में पता चला। हरिद्वार में आध्यात्मिक वाद–विवाद में अन्य हिन्दू सम्प्रदायों के आध्यात्मिक गुरूओं द्वारा परीक्षण के रूप में प्रश्न किया गया, तब श्री प्राणनाथ जी ने सम्प्रदाय को निजानन्द के नाम से पहचान कराया। तो क्या हम उनकी घोषणा को रद्द करके कृष्ण–प्रणामी के रूप में एक नया संप्रदाय प्रस्तुत कर रहे हैं ?

मेरे लिए श्री कृष्ण हमेशा विष्णु के अवतार ही थे और उनका रूप एक नश्वर शरीर का प्रतिनिधित्व करता था जिसमेंविष्णु की चेतना पांच हजार साल पहले उतरी। इसीशरीर में परमात्मा (राज जी) की आवेश शक्ति ने ठीक ग्यारह साल बावन दिन ब्रज में लीला किया था। इस सम्बन्ध में मेरे लिए हैरान करने वाली बात यह है कि जब श्री कृष्ण श्री राज जी के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं और पांच हजार साल पहले ही यह पता चल गया था, तो फिर प्राणनाथ जी को प्रकट होने की क्या जरूरत थी ?श्री राज जी (सुप्रीम लॉर्ड) ने जब पांच हजार साल पहले अपने स्वयं के रूप को व्यक्त कर दिया था, तो उसी वक्त अपना (परब्रह्म का) ज्ञान दे दिया होता। क्या इसका मतलब यह नहीं निकलता कि विष्णु के अवतार के लिए श्री राज जी ने अपना स्वरूप दिया ?यह मेरे लिए एक सारहीन और हास्यास्पद बात लगती है। इसका मतलब यह होगा कि श्री राज जी ने

अपनी ब्रज और रास की लीला के रूप में स्वयं को योगमाया में अखण्ड किया। यह कितना ऊटपटांग, असंगत और हास्यास्पद बात है ?इस अवधारणा को स्वीकार करना किसी भी तार्किक की समझ से परे है कि परमात्मा ने अपने को एक बार नहीं बल्कि दो बार अखण्ड किया, यद्यपि वह पहले से ही शाश्वत हैं। वास्तविकता तो यह है कि उसने अपने लीलारूप तनों को अखण्ड किया, अपने आवेश स्वरूप को नहीं। यदि तन और उसका नाम ही परमात्मा है तो क्या यदि आप अपने पुत्र का नाम श्रीकृष्ण रख देंगे तो वह भी अक्षरातीत हो जायेगा ?

अगर कृष्ण ही परमात्मा श्री राज जी के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो मेरे कई संबंधी ''हरे कृष्ण'' संप्रदाय से जुड़े हैं जो कृष्ण को ही परमसत्ता मानते हैं, मैं भी उनके साथ जुड़ा रहता। आश्चर्य कि बात यह है कि मुझे इस संप्रदाय में क्यों होना चाहिए ?इसके अलावा कई अन्य संप्रदाय हैं, जो कृष्ण को ही परमात्मा मानते हैं, तो एक ही अवधारण की बहुलता (अनेकत्व) की क्या आवश्यकता है ?पुनश्च, प्राणनाथ जी की क्या जरूरत है ?ब्रह्मवाणी के नाम पर इतना कोलाहल (हल्ला गुल्ला) क्यों है ?जब वाणी का परम उद्देश्य सिर्फ परमात्मा और उनकी पहचान देने के लिए ही है और जो पहले से ही श्री कृष्ण के रूप में इस दुनियां में कइयों के द्वारा प्रचारित किया जा चुका है।

शायद मेरी अबोध प्रज्ञा एवं चेतना यह कहती है कि परमधाम का कुछ भी इस नश्वर जगत में नहीं आ सकता। जब वहां से कुछ भी यहां नहीं आ सकता और कुछ भी यहां से वहां नहीं जा सकता, तो श्री राज जी, जैसा काफी लोगों में मान्यता है, कृष्ण में इस नश्वर जगत में प्रकट हो जाएं, यह कैसे संभव है ?इस दुनियां के किसी भी अवतार का रूप परमात्मा के स्वरूप से समानता रखता हो, यह हो ही नहीं सकता क्योंकि उनका स्वरूप हमेशा ही अकल्पनीय और अगाध रहा है। क्या वह सौन्दर्य और शोभा (भव्यता) इस दुनिया में दुहराई (प्रतिकृति बनाई) जा सकती है ?उनका स्वरूप एक ऐसा अतुलनीय और समझ के बाहर का स्वरूप है जो इस नश्वर दुनिया को अज्ञात ही रहा है। अनजान दुनिया के लिये राज जी का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो अनोखा, अद्वितीय, सुव्यक्त और अलग हो। मेरे लिए यह कहना या सोचना सच का एक उपहास्यास्पद प्रतिकृति (नकल) है कि कृष्ण परमधाम के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त दुनिया के दूसरे धर्मों के बीच इस अवधारणा की स्वीकृति कैसे प्राप्त हो सकती है और एक छतरी के नीचे सभी को एकजुट करना तो बिल्कुल असम्भव है।

जो भी तथाकथित आध्यात्मिक नेताओं द्वारा कहा जाता है, उसे आंख मूंदकर स्वीकार नहीं किया जा सकता अथवा उसे आंख बन्द करके अनुसरण इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि अन्य लोग ऐसा

करते हैं। मेरे लिए स्वयं पढ़ने, समझने और विश्लेषण की जरूरत है और इस प्रक्रिया से अगर कुछ भी तर्कसंगत बात समझ में आती है, तो मैं उसे स्वीकार कर लेता हूँ। मैं किसी गद्दी या गादीपति को स्वीकार नहीं करता, परन्तु किसी भी आध्यात्मिक महापुरूष का मैं सम्मान करता हूँ, जो मेरे हिसाब से एक विद्वान और अध्यात्म का ज्ञानी और इतना ही नहीं, उसके आचरण, भाषा एवं जीवनशैली के आधार पर वह विश्वसनीयता के अधिकारी हों। ब्रह्मवाणी से मिली जानकारी और श्री प्राणनाथ जी के आदेशानुसार छत्रसाल जी द्वारा गद्दी पर श्रीमुखवाणी को पधराने की घटना मेरे लिए स्पष्ट संकेत देती है कि निजानंद सम्प्रदाय में गद्दी की कोई गुंजाईश नहीं है और इसके नाते कोई भी मानव गादीपति नहीं हो सकता। तो क्या हम ब्रह्मवाणी से बंधे हैं और प्राणनाथ जी की आज्ञा का पालन कर रहे है ?

इस परम्परा/संगठन के अन्दर हो रहे तमाम कृत्यों, जैसे– कई प्रकार की छुद्र झडपें, दूसरे से बढ़कर श्रेष्ठ बनने की कोशिश, हर किसी के अगुवा और गुरू बनने की चेष्टा और क्या कुछ नहीं, को देखकर मुझे घुटन सी महसूस हो रही है। मेरे मन में विचार आता है कि हम किस तरह से अन्य संप्रदायों से भिन्न हैं ?क्या हम सबसे गंदा होने की प्रतियोगी दौड़ में नहीं हैं ?हमने इस उच्च आध्यात्मिकता प्राप्ति के गढ़ की क्या हालत बना दी है ?क्या मेरे अंदर एक आत्मा है, ऐसा सोचकर मैं परेशान नहीं होता और न ही इस बात को समझने की कोशिश ही करता हूँ क्योंकि उसका तो अपने आप ही उद्धार हो जाएगा, मगर मेरी सर्वाधिक परेशानी मेरे जीव की मुक्ति के बारे में है क्योंकि मैं यह सुनिश्चित करना चाहता हूँ कि मेरे जीव को योगमाया में पहली या दूसरी बहिश्त प्राप्त हो जाय। इसलिए इस परम्परा के भीतर चल रहे तमाम भयंकर, संदिग्ध और स्वार्थी खेलों से दूर रहकर मैं श्री प्राणनाथ जी का एक विनम्र अनुयायी के रूप में राज श्यामाजी के आनन्दघन स्वरूप में खोया रहना चाहता हूँ। मैं किसी भी प्रशंसा, मान्यता या पद की आशा न रखते हुए सिर्फ और सिर्फ निज प्रियतम श्रीराजजी की सहानुभूति और कृपा की अभिलाषा रखता हूँ। सम्प्रदाय के अंदर चल रहे खेल और तमाशों को देखते हुए मोहभंग होने के नाते मुझे लगता है कि श्री प्राणनाथ जी पर आस्था और विश्वास रखने वाले व्यक्तियों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि एक समूह के साथ नहीं अपितु व्यक्तिगत आधार पर परमधाम के रास्ते पर आगे बढ़ें और राजजी की दया और कृपा प्राप्त करें।

आज का माहौल ऐसा है कि विभिन्न झगड़ते समूहों के साथ जुड़े रहने से यह निष्ठावान (ईमानदार) व्यक्तियों की राह में न केवल बाधक बनता है बल्कि आध्यात्मिक प्रगति को भी नुक्सान पहुँचाता है। यही नहीं, इस घुटन भरे वातावरण में हम सांस लेने के लिए भी हांफते रह जाते हैं।

मैं चाहूँ तो भी किसी बौद्धिक व्यक्ति को

इस सम्प्रदाय के साथ लंबे समय तक जुड़े रखने की बात असंभव है क्योंकि जितनी तेज़ी से वह इसमें आया है, उससे भी अधिक तेजी से वह बाहर निकल जायेगा, जब वह इस संप्रदाय के अन्दर चल रहे विरोधाभास को देखेगा। इस महान संप्रदाय के तथाकथित उत्तराधिकारी और इसके मालिक कब इस सच्चाई को मानेंगे या महसूस करेंगे और अपने आप को सत्ताधारी, सरंक्षक, मालिक, नेता, गुरू और गादीपति न मानते हुए सिर्फ श्री राजजी की प्रियतमा आत्माओं के रूप में देखेंगे ?क्या यही बात श्री प्राणनाथ जी ने अपने अनुयायियों में अन्तर्निविष्ट करने कोशिश नहीं की थी ?क्या ब्रह्मवाणी का मर्मज्ञान यही है ?मिहिरराजजी ने स्वयं बिहारी जी को अधिकार की सत्ता प्रदान की और ब्रह्मवाणी के साथ आत्माओं की सादगी और जाग्रति के पथ पर चल पड़े जबकि उनके भीतर श्रीराजजी की पूर्ण सत्ता एवं महिमा थी। दुर्भाग्यवश बहुत से लोग ऐसे हैं जो नेतृत्व के अधीन रहना पसंद करते हैं और उनके लिए जो गादीपति कहते हैं, वही वेदवाक्य होता है। इन लोगों का श्री मुखवाणी और अन्य शास्त्रों को स्वयं पढ़कर विश्लेषण करके तार्किक निष्कर्ष निकालने की तरफ झुकाव नहीं होता। कब इन ''बानी इजराइल'' के लोगों पर विवेक और सही समझ का प्रभात होगा, जो इस सर्वोच्च संप्रदाय की महिमा और महानता को बहाल कर देगा ?

मुझे लगता है कि मौजूदा और पहले वाले तथाकथित महान अगुओं ने झाड़ियों को देखने में पेड़ देखने में चूक कर दी। क्या श्री प्राणनाथ जी ने नहीं बताया था कि ब्रह्मसृष्टि किन में हैं या किनमें श्री राजजी की शक्ति खेल कर रही है, हम इस बारे में निर्णय करने न बैठें ?बस, आत्मजागृति के कार्य में अग्रसर रहें, जो हर आत्मा का कर्तव्य है।

श्री बीतक साहिब और श्रीमुखवाणी के अध्ययन से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि किसी जागृत आत्मा को अन्य तलाश करनेवालों को तारतम देने का अधिकार है। तो फिर क्यों हमारे संप्रदाय में यह अधिकार कुछ चुनिन्दा लोगों के लिए प्रतिबंधित है ?मैं इस प्रहसन का अनुमोदन नहीं करता। श्रीराजजी की कृपा और प्रेरणा से मैंने अपने कुछ लोगों को तारतम दिया। मज़ेदार बात यह है कि वह किसी समूह से नहीं जुड़े हैं। यहां तक कि वह किसी कार्यक्रम में भाग नहीं लेते हैं। व्यक्तिगत रूप से वाणी अध्ययन और राज जी की प्रार्थना, पूजा और ध्यान के पथ पर चल पड़े हैं। मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ, सराहना करता हूँ और उन्हें प्रणाम करता हूँ। हां! इसमें कोई शक नहीं कि अगर वहाँ कोई वरिष्ठ सुन्दरसाथ (रहनी, करनी और ज्ञान के आधार पर) होता, तो मैं तारतम देने के लिए उनसे अनुरोध किया होता। मेरे लिए तो हमेशा ही आध्यात्मिक परमसत्य व्यक्तिगत खोज है न कि सामूहिक प्रयास। इसमें कोई संदेह नही

शेष पृष्ठ 12 पर.....

संस्था समाचार

श्री प्राणनाथ जी जागनी अभियान शिविर

1. ग्राम–तराखास

जागनी शिविरों का आयोजन पूज्य सरकार जी के द्वारा प्रारम्भ किया गया था। उनका अर्न्तध्यान होने के बाद माया के झोकों ने दीपक को बुझाने की कोशिश तो की पर असफल रहे। परब्रह्म के ज्ञान के दीपक को कौन बुझा सकता है?परेशानियों का सामना करने वाला एक न एक दिन अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ही जाता है।

अब जागनी का कार्य श्री राजजी ने श्री प्राणनाथ सेवा रुप में ज्ञानपीठ के लिये उद्देश्य को सौंप रखा है। इस प्राणनाथ के श्री चंचल लेकर श्री पद्मावती ज्ञानपीठ सरसावा श्री दिलीप जी, श्री पांच प्राणनाथ पुरी पन्नाधाम के राजकुमार जी महाराज, श्री में श्री ज्ञानपीठ के श्री संचमान जी, जी एवं कलाकारों नरेन्द्र जी प्राणनाथ ज्ञानपीठ के द्वारा विशाल कुमार, अर्पण जी तथा अपने निजी साधन जिला बरेली के तराखास ग्राम में त्रिदिवसीय शिविर में पहुंचे। इस ग्राम के अन्दर आज तक कोई भी ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था, परन्तु यहां के हरपाल जी ने श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में जाकर ब्रह्मज्ञान की दीक्षा ली थी, जिनके माध्यम से अपने गांव में इस शिविर का आयोजन किया। इस शिविर के अन्तर्गत अर्पण जी एवं नरेन्द्र जी ने अपने मीठे स्वरों में वाणी गायन किया। पेहेले आप पेहेचानो, रे हो दुनिया बावरी, खोज बड़ी संसार, बिंद में सिंध समाया, अन्दर नाहीं निरमल आदि किरंतन गाये गए।

चर्चा के दरम्यान दिलीप जी महाराज ने पहले दिन मनुष्य तन की महिमा बताई और अनेक दृष्टान्तों से कलियुग में परब्रह्म को बुद्ध निष्कलंक के स्वरूप में आने के सम्बन्ध में बताया। चंचल जी ने भी अपने प्रवचन में वेद–शास्त्र पुराण एवं अन्य हिन्दु ग्रन्थों के प्रमाण देकर परब्रह्म की पहचान करवायी गोरखपुर से पधारे हीरालाल जी महाराज ने खुलासा ग्रन्थ के माध्यम से हक की हकीकत समझायी। तथा श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के विद्यार्थी राजकुमार जी ने धर्म और सम्प्रदाय के अन्तर को प्रमाण देते हुए समझाया कि सम्प्रदाय किसी महापुरुष द्वारा चलायी जाती है और उसीसे उसका नाम भी दिया जाता है, परन्तु धर्म तो शाश्वत सत्य है, अनादि है, धर्म में विकृति नहीं होती है, धर्म का लोप नहीं होता, धर्म ही सबकी रक्षा करता है धर्म के दस लक्षण होते हैं जो उन दस लक्षणों को ग्रहण करता है वही धार्मिक कहा जाता है। सम्प्रदाय में अनेकता हो सकती है पर धर्म में अनेकता नहीं हो सकती।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचं इन्द्रिनिग्रह।
धीः विद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत आर्य समाज के प्रतिष्ठित विद्वत्गण तथा आर्य समाज बरेली के अध्यक्ष विजयबहादुर गौड़, बदायूं के प्रवण मिश्रा, सहसवान के प्रद्युम्न देव, बरेली के पीयूष सिंह, फरीदपुर के रामबहादुर, रामसरन, रामदास, हरनाम, चौधरी कृष्णपाल आदि लोग पधारे थे।

इन लोगों के साथ खुले मंच पर अपने विचारों का आदान–प्रदान हुआ। इन लोगों का विचार परमात्मा को कण–कण में सर्वव्यापक एवं निराकार मानना था श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के विद्वानों का विचार यह था कि परमात्मा निराकार और साकार दोनों से भिन्न शुद्ध साकार है और हद–बेहद से परे दिव्य ब्रह्मपुर (परमधाम) के कण–कण में विद्यमान है दोनों लोगों ने अपने–अपने अकाट्य प्रमाण को प्रस्तुत किये। यह समाचार दिनांक 15 दिसंबर 2013 के 'अमर उजाला' (बरेली के) अखबार में प्रकाशित हुआ।

2. ग्राम नाई

ग्राम तराखास के शिविर के पश्चात् सुन्दरसाथ की मांग के अनुसार श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा के गायक कलाकार एवं वक्तागण दिनांक 16/12/2013 को नाई गांव (बदायूं) में पहुंचे वहां के सुन्दरसाथ अपने दिल के भाव को खोलकर के सेवा में लगे रहे। दोपहर के मंच पर पन्नाधाम से पधारे पूज्य दिलीप जी महाराज ने एक परब्रह्म, परमात्मा की पहचान कराते हुए बताया कि हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, बौद्ध, जैन एक परमात्मा के द्वारा बनाये गये हैं और हम सम्प्रदाय के द्वारा अलग–अलग बिखरते हैं परन्तु आत्मा सबकी एक है और परमात्मा सबका एक है। आत्मा और परमात्मा में कोई भिन्नता नहीं है, भिन्नता संप्रदायिक विचारों की है। इसलिए हमें सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर एक सत्य धर्म

या परमात्मा की पहचान करनी चाहिये क्योंकि धर्म या परमात्मा ही शाश्वत सत्य है। दिलीप जी महाराज जी ने तीन सृष्टियों के सम्बन्ध में कबीर साहेब के बीजक ग्रन्थ का प्रमाण देते हुए बताया कि जीव सृष्टि हद के ब्रह्माण्ड की, ईश्वरी सृष्टि बेहद के ब्रह्माण्ड की और ब्रह्मसृष्टि परमधाम की रहने वाली है।

1. शास्त्र ने तीनों सृष्टि के ही जीव ईश्वरी ब्रह्म इनके ठौर जुदे–जुदे ये देखिये अनुक्रम।।

2. जीव सृष्टि बैकुंठ लो, सृष्ट ईश्वरी अक्षर।

ब्रह्म सृष्टि अक्षरातीत लो, शास्त्र कहे यों कर।।

कबीर साहेब के अनुसार–

हद उलंघे सोमानवा, बेहद उलंधे सो पीर।

हद बेहद दोनों उलंघे, वाको नाम फकीर।।

ज्ञानपीठ के प्रचारक श्री चंचल जी ने नशा मुक्ति पर जोर देते हुए बताया कि प्यारे सज्जनों नशा को हम नहीं खाते है नशा हमें ही खा जाती है। नशा करने वाला व्यक्ति जब गंदी नाली पड़ा रहता है तो उस समय बातें महाराजा की करता है, खिस्सा खाली होने के बावजूद भी बंगला खरीदने का ख्वाब देखता है। नशा टूटने के बाद यदि उससे पूछा जाये कि आपके बंगले की रकम कहां है?तब वह कैसा महसूस करता है यही बात आप सब धर्मप्रेमी सज्जनों पर घटती है। आप भी माया के नशे में चूर होकर एक परमात्मा को भूलकर माया को शिर पर चढ़ाए हुए हैं। जब तक यह माया का नशा नहीं टूटेगा तब तक परमात्मा का ज्ञान अन्दर नहीं उतरेगा। हमें माया का नशा और शरीर के अहंकार से ऊपर उठकर एक परमात्मा को याद करना चाहिए। शरीर को यदि निरोग बनाना है तो व्यसन से भी पूर्णरुपेण मुक्त होना ही पड़ेगा क्योंकि व्यसन ही हमारा सत्यानाश करता है। इस क्षेत्र के लोग अधिकतर स्मेक, हीरोईन, अफीम, बीड़ी, तम्बाकू, गुटखा और चरस आदि का सेवन करते है। जो उनकी बुद्धि को नास्तिकता के तरफ ले जाते हैं। इसलिये मैं आपसे यही चाहता हूं कि आप सभी लोग नशीली वस्तुओं का परित्याग पूर्णरुपेण कर दें और भोजन भी पूर्ण शाकाहारी और सात्विक करें।

तब जाकर इस वाणी का ज्ञान आप के अन्दर उतरेगा। श्री प्राणनाथ जी ज्ञानपीठ के विद्यार्थी राजकुमार जी ने गुरू और सतगुरू के ऊपर प्रकाश डालते हुए बताया कि समाज के अन्दर गुरूजनों की संख्या शिष्यजनों से भी आगे बढ़ रही है। कोई भी रामायण गीता, भागवत, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाईबिल, बौद्ध ग्रन्थ एवं जैन ग्रन्थ के कुछ अंश को ही जानकर समाज में गुरू की पदवी प्राप्त कर लेते है। उन्हें धर्म के दस लक्षणों को पता भी नहीं होता और धार्मिक बनने का टिकट हासिल कर लेते हैं, क्या इससे समाज का कल्याण हो जायेगा। गुरू तो समाज के पथ प्रदर्शक होते है। लोभ–लालच से दूर होते हैं। गुरू की महिमा के सम्बन्ध में रामायण कहती है कि–

गुरू बिनु भव निधि, तरैं न कोई। ज्यों

बिरंचि शंकर सम होई।।

हमें गुरु करना अवश्य चाहिये पर कैसा?जो हमें भवसागर से पर कर दे और जो गुरु हमें जगत का ज्ञान देता है वह तो केवल गुरु है और इसी पद के लिये साधु समाज आपस में लड़ झगड़ रहे है क्या गुरु का कर्तव्य लड़ना झगड़ना है कि लड़ाई झगड़ा अलग हटाकर शान्ति प्रदान करना है?

धर्मप्रेमी सज्जनों! अगर हमें भव से पार होना है तो हमें गुरु से परे सच्चे सद्गुरु की खोज करके उसके चरणों में समर्पित होकर के आत्मकल्याण करना चाहिए।

खोज बड़ी संसार रे साधो, खोज बड़ी संसार।

खोजत खोजत सतगुरु पाईये, सतगुरू संग करतार।।

3. पीलीभीत

जिला पंचायत द्वारा संचालित पीलीभीत बैंकेट हाल में त्रिदिवसीय शिविर का आयोजन दिनांक 19. 12. 2013 से 21. 12. 2013 तक वी. डी. गंगवार (निरंजन कुंज कालोनी) के सहयोग से सम्पन्न हुआ। इस अध्यात्मिक शिविर में श्री प्राणनाथ जी ज्ञानपीठ सरसावा से पूज्य चंचल जी, राजकुमार जी एवं पन्नाधाम से पूज्य दिलीप जी महाराज पधारे थे तथा गोरखपुर से हीरालाल जी एवं ज्ञानपीठ के गायक कलाकार अर्पण जी नरेन्द्र जी संचमान और विशाल जी आए हुए थे।

चंचल जी एवं दिलीप जी महाराज ने एक परब्रह्म परमात्माकी पहचान करायी। धर्म और सम्प्रदाय की भिन्नता को समझाते हुए बताया कि धर्म एक है, धर्म सत्य है, धर्म अनादि है, धर्म परमात्मा का स्वरूप है। बिना धर्म धारण किये हुए कोई भी मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर नहीं सकता। सम्प्रदाय एक विशिष्ट व्यक्ति के द्वारा चलाई जाती हैं। सम्प्रदाय अनेक हो सकते हैं।

राजकुमार जी ने त्रिधा लीला (बृज, रास तथा जागनी) का विधिवत् वर्णन किया हीरालाल जी ने एक परमात्मा के सम्बन्ध में समझाया। परमात्मा एक और देव अनेक हैं।

चंचल जी ने सम्प्रदायवाद से ऊपर उठकर एक सत्य धर्म को धारण करना होगा धर्म को धन्धा नहीं बनाना चाहिए। धर्म के दस लक्षणों से युक्त ही धार्मिक कहाने का अधिकार है। कर्मकाण्ड करना धर्म नहीं है।

शरीर के ऊपरी भेष बनाने से धर्म धारण नहीं होता है धर्म तो चेतना का विषय है। हमें चित्र को छोड़कर चरित्र की पूजा करनी चाहिए। उत्तम चरित्र वाला ही लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की अग्नि में जलने वाला ऐसे चौरासी लाखों योनियों में भटकता रहता है।

आगामी कार्यक्रम

आगामी 3 मार्च से 7 मार्च तक ग्राम डमरापुर, जिला–प. चम्पारण, बिहार मे पंचदिवसीय कार्यक्रम आयोजन किया जा रहा है। जिन सुन्दरसाथ एवं धर्मप्रेमी सज्जन को ब्रह्मज्ञान का लाभ लेना है वे अवश्य पधारें।

मानवीय संवेदना

सुबह होती है, शाम होती है, बस यूं ही जिन्दगी तमाम होती है। कभी आप की दृष्टि सांझ के ढलते सूरज पर पड़ी हो और विचार किया हो, कहीं हमारा जीवन भी यूं ही ढल जाएगा। आपकी अन्तः चेतना से कुछ इस प्रकार प्रकाश की किरणें फूटती हैं जो आपको कुछ करने के लिए प्रेरित करती हैं जिन्हें हम संवेदना का नाम दे सकते हैं। इन संवेदनाओं से बढ़कर दुनियां में कुछ भी श्रेष्ठ नहीं। इन्सानी जिन्दगी के दुःखों, पीड़ाओं, परेशानियों को समझना निश्चित रूप से एक श्रेष्ठ कार्य है। जिस पल संवेदनाओं की लौ जल उठती है तो शरीर व मन की सभी शक्तियां सहयोग देने में जुट जाती हैं। कितने ही अवरोध व विषमताएं मार्ग में बाधक बने वे इस लौ को नहीं बुझा पाती।

जिस दिन हमारे सुन्दरसाथ के अन्दर ये मानवीय संवेदनाएं जाग्रत हो जाएगी उसी दिन हमारे जीवन में स्वर्णयुग आ जाएगा। हम सभी को अपने कर्तव्य निभाने की कोशिश में लगे रहना चाहिए। ऐसा न हो कि

मोमिन रखे मोमिन सो, तन मन अपना माल।

सकारात्मक सोच, जीवन में ऊर्जा पैदा करती है और ऊर्जा जीवन में आशा, उत्साह और उमंग का नूतन संचार करती है। यह विश्वास हमें अहसास दिलाता है कि हमारे अन्दर एक ऐसा नैसर्गिक तत्व है जिसका स्पर्श पाते ही हमारे अन्दर आनन्द की लहरें हिलोरें लेने लगती हैं। शायद इसी को ही संवेदनशीलता कहते हैं। संवेदनशीलता एक ऐसा द्वार हैं जिसमें आप ''अहिर्निशं सेवामहे'' का व्रत ले लेते हैं। आपके अन्दर उदार आत्मीयता गोचर होने लगेगी। संवेदनशीलता जब हमारे व्यवहार में शामिल हो जाती है तब हर व्यक्ति में अपनापन का बोध होने लगता है। ऐसे व्यक्ति का मिलन, उसकी शालीनता, उसका सरल व स्नेह स्पर्श हमारे हृदय को झंकृत कर देता है।

संवेदना के बाद का दूसरा चरण होता है– सक्रियता। भाव चेतना जागृत होने पर आप इसे क्रियात्मक रूप देने में विवश हो जाते हैं। यह लौ धधक उठी थी कर्मवीर गांधी जी के जीवन में, जब तक महात्मा नहीं कहलाए थे। एक दिन उन्होंने देखा कि एक युवा लड़की फटी धोती से जैसे–तैसे अपना शरीर ढके, सिर पर टोकरी उठाए चले जा रही थी। धोती केवल मैली कुचैली ही नहीं थी बल्कि एक चीथड़ों के रूप में थी अर्थात् कई जगहों से फटी थी जिससे उसे अपना शरीर छुपाने में भी दिक्कत आ रही थी। उस लड़की को सभी देख रहे थे पर उनकी दृष्टियों में घृणा, उपेक्षा और कुछ में तो कामुक भाव भी दिखाई देते थे, नहीं थी तो केवल संवेदना। दृष्टि गांधी जी की भी गई, उनकी दृष्टि में

केवल एक ही भाव था वह थी संवेदना। उन्होंने उसे पास बुलाया और पूछा, क्यों बहन! तुम इस धोती को धोती क्यों नहीं ?इसके फटे हिस्से को सिल क्यों नहीं लेती ?'' इस प्रश्न ने उस युवती के वर्तमान, अतीत तथा आर्थिक भावों को कुरेद डाला। जिस प्रकार किसी गहरे घाव को छूने पर जो पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा उसकी आंखों में उभर आई और कहने लगी, ''कोई दूसरी होती तो, तब तो धोती और यह सिलने लायक होती तो इसे कहीं सी लेती।''

यह उत्तर सुनकर गांधी जी का चेहरा शर्म से लाल पड़ गया। उन्होंने अपने झोले से धोती निकाली और उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा ''लो बहन! अपने भाई की ओर से इसे स्वीकार करो।'' वह चली गई। उसी समय गांधी जी ने पहनी धोती को फाड़कर दो भाग कर लिए। आधा पहनने का और आधा ओढ़ने का। केवल पोशाक बदलने से नहीं अपितु अपने अंतरग की सरंचना के उलट फेर से।

ऐसे उदाहरण हमारे समाज में भी कम नहीं है। मुझे आज भी वह दिन याद है, जब देश का बंटवारा हुआ। पाकिस्तान से उजड़े सुन्दरसाथ ने जब भारत की सीमा में प्रवेश किया तो उनकी दयनीय दशा को देखते हुए महाराज श्री रामरतनदास जी ने अपने आश्रम के दरवाजे उनके लिए खोल दिए।

भले ही आश्रम में उस समय केवल दो ही कच्चे झोंपड़ी नुमा कमरे थे। दिल में स्थान होना चाहिए। हम कितने ही सुन्दरसाथ थे, सभी को तन ढ़कने के लिए वस्त्र और खाने को अन्न दिया। वह दृश्य आज भी मेरी आंखों के सामने घूम जाता है, कितने थे संवेदनशील महाराज श्री!

एक और ऐसा ही उदाहरण मैंने अपनी आंखों से देखा– महाराज मुरलीदास जी पाकपट्टन वालों में उन्होंने भी शरणार्थियों को स्थापित करने के लिए अपना अथक प्रयास देहली में हकीकतनगर व किंग्सवे कैम्प में प्लाट व क्वाटर अलाट करवाने के लिए देहली सरकार से पुरज़ोर प्रयत्न किया। जो आज भी सुन्दरसाथ के लिए स्मरणीय है।

श्री मिहिरराज जी के तन में विराजमान इन्द्रावती की आत्मा तो स्वयं ही संवेदना की पर्याय हैं। जब धाराभाई को बिहारी जी द्वारा सुन्दरसाथ से बहिष्कृत कर दिया गया तो उन्होंने उसे अपने चरणों में ले लिया। शिवजी भाई और रामजी भाई को पाती देकर बिहारी जी के चरणों में प्रणाम करने के लिये भेजा था। परन्तु रामजी भाई निर्धन होने के नाते, तीन दिन तक उपवास करते तथा रोते बिलखते दर्शनों की अभिलाषा लिए तड़पते रहे, उनका प्रणाम बिहारी जी ने स्वीकार नहीं किया। इस स्थिति को जानकर श्रीजी बड़े दु:खी हुए। उनका हृदय द्रवित हो उठा, संवेदना प्रबल हुई और उसे अपने चरणों में रखते हुए कह उठे– जो कोई लूला पांगला साथ, इन्द्रावती न छोड़े तिनको, पहुंचावे पकड़ हाथ।

किरपाराम इत आइया, तहां पाती ले पुकार।

शेष पृष्ठ 12 पर.....

संसार को पाना ही सब कुछ नहीं

आज का मानव धन–दौलत पाने के लिए दौड़–भाग कर रहा है। अपना स्वास्थ्य, समय और जीवन दौलत को समर्पित कर रहा है। मेरा अभिप्राय यह है कि धन को अर्जित करना बुरा नहीं है। वेदों में कहा है–

कस्य स्विद् धनं (यह धन किसका है) यह धन उस परमपिता परमात्मा का है। उसने हमे यह धन अपने शरीर के उपयोग के लिए दिया है लेकिन हम सिर्फ उसी के लिए भाग रहे हैं। वेदों में कहा है– 'इदं न मम् (यह मेरा नहीं है) इस वाक्य को स्मरण करके धन का उपयोग करो।

मुझे आपको और हम सबको यदि यही लगता है कि संसार को पाने (धन को पाने) से ही हमारी जिंदगी व्यतीत होगी तो यह हमारी भूल है।

आत्मा के लिए यह शरीर एक वस्त्र है जिसे उपयोग करने के बाद उतार दिया जाता है। जिसे हम मृत्यु भी कहते हैं।

मुनुष्य के पास धन–दौलत होते हुए भी मृत्यु के समय उसकी दयनीय दशा होती है और वह मृत्यु के समय सोचता है इस धन दौलत को कमाने में मैंने अपनी जिंदगी का एक अच्छा खासा भाग लगा दिया है और इतनी दौलत होने के बावजूद भी मृत्यु के वक्त कुछ भी काम नही दे रहा है जो मनुष्य अपने आपको जान लेता है, उसे किसी भी प्रकार का दुःख नहीं है। वह वह तो सम्पूर्णत्व की प्राप्ति कर लेता है। वस्तुतः उसे यह पता होता है कि यह शरीर कुछ भी नहीं है यह शरीर परमात्मा ने मुझे दूसरों के उपकार के लिए दिया है। यह शरीर एक साधन है उपकार करने के लिए वैसे भी उपकार हम तीन प्रकार से कर सकते हैं, शरीर से परिश्रम से, मन से दूसरों की हितकामना से और वाणी से दूसरों को मार्गदर्शन देने से। इन तीनों का वास्तविक स्वामी गुरु होता है, जो हमें प्रकाश की ओर ले चलता है। पुराने समय में गुरु अपने शिष्य को मृत्यु सिखाते थे किस तरह हम अपने शरीर का त्याग करें या त्याग करने के बाद किस शरीर में किस तरह प्रवेश करें। हिमालय के 'सन्तों के संग निवास' नामक पुस्तिका में कुछ इस प्रकार की घटना है हिमालय में निवास करने वाले एक संत का नाम था बूढ़े बाबा। वे उच्चकोटी के संत थे। उनका शरीर पतला, दाढ़ी और बाल बिल्कुल सफेद थे। वे प्रायः अपने गुरूदेव से उच्चकोटी की आध्यात्मिक साधनाओं के विषय में बातचीत किया करते थे। लेकिन इस बार अपने शरीर को बदलने के विषय में बातचीत कर रहे थे। जिन गुरुदेव से ये बात कर रहे थे। उनका एक शिष्य था स्वामी राम , ये भी अपने गुरूदेव से अध्यात्मिक साधना सीखा

करते थे। गुरूदेव ने अपने शिष्य राम को बूढ़े बाबा के साथ भेज दिया ताकि वे इस घटना से शिक्षा ले सकें।

स्वामी राम बूढ़े बाबा से पूछा कि आप इस शरीर को क्यों छोड़ना चाहते है?वे बोले–अब इस शरीर में अधिक समय तक समाधि में स्थिर रहने कि शक्ति नहीं है। अब मैं 90 वर्ष का हो गया हूं। कल मुझे एक मृत शरीर मिलने वाला है, जिसे सांप काटेगा और उसे नदी में फेंक देंगे। और प्रातः बूढ़े बाबा और स्वामी राम नित्यक्रिया से निवृत्त होकर ध्यान में बैठ गये। जब स्वामी राम ने आखें खोली तो वे वहां नहीं थे। उन्होंने बूढ़े बाबा का दो–तीन दिन तक इन्तजार किया लेकिन वे नहीं लौटे तो स्वामी राम ने हिमालय लौटने का निर्णय लिया। वे जब अपने गुरूदेव के पास पहुंचे तो गुरूदेव ने कहा–पिछली रात्रि बूढ़े बाबा यहां आये थे और तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे। कुछ दिनों बाद यहां एक नवयुवक राम की गुफा पर आया और उन्हें देखकर ऐसे बातचीत करने लगा जैसे उन्हें बहुत पहले से जानता हो। बूढ़े बाबा ने कहा– मुझे दुःख है कि शरीर बदलते समय तुम मेरे साथ नहीं रह सके। स्वामी राम के लिए यह आश्चर्य की बात थी उनकी बातचीत की शैली, चलने का ढंग बिल्कुल पहले जैसा था। उन्होंने उसे गौर से देखा। इसके बाद गुरूदेव ने उनका नाम आनन्द बाबा रखा और कहा कि शरीर के साथ नाम भी चला जाता है। नाम का आत्मा से सम्बन्ध नहीं है। अतः इन्हें बूढ़े बाबा कहना उचित नहीं है और आनन्द बाबा आज भी हिमालय पर विचरण कर रहे हैं उनके लिए यह धन–दौलत शरीर कुछ भी नहीं है।

इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि उच्चकोटि के योगी के लिए यह सम्भव है कि वह स्वेच्छा से अपना शरीर त्याग सकते हैं और स्वेच्छा से नये शरीर में प्रविष्ट हो सकते हैं। समर्थ योगी ही इस क्रिया को जानते हैं। सामान्य लोगों के लिए यह केवल कल्पना मात्र है।

योगी लोग अपना शरीर परिवर्तन स्वार्थ के लिए नहीं करते बल्कि परमात्मा प्राप्ति ओर परोपकार के लिए करते है। उन्हें मालूम है कि यह शरीर पांच तत्वों से बना है और एक दिन मिट्टी में मिल जायेगा। उन्हें इस शरीर की परवाह नहीं है। परवाह तो उन्हें इस बात की है कि वे किस तरह परमात्मा को प्राप्त कर सके। वाणी में कहा है–

चौरासी लाख योनियों में यह शरीर उत्तम है और उस परमात्मा को पाने के लिए मिला है।

योगी अपना शरीर परिवर्तन इसलिए भी करते है कि गर्भ में होने पर जीवात्मा निद्रा अवस्था में होता है जिस कारण उसका समय और ज्ञान नष्ट हो जाता है और उसे पुनः क ख ग इत्यादि पढ़ना पढ़ता है।

जब राजजी हमे कहते हैं कि तुम यदि मेरी ओर एक पग बढ़ाओगी तो मैं दस कदम बढ़ाऊंगा। तो हम सभी को राजजी पर विश्वास करके अपने आपको जानना होगा

तभी हम राजजी की ओर बढ़ सकेंगे। अपने को जानने का तात्पर्य है ध्यान द्वारा अपने को जानना यदि हमने अपने को जान लिया तो राजजी और आत्मा में कोई फर्क नहीं रहता है हम स्वतः परमात्मा (राजजी) को जान जाएंगे और यही हमारी परम उपलब्धि होगी और परमात्मा को जानने के बाद यह नहीं कि हमें इस संसार को छोड़ना पड़ेगा वह तो आत्मा के ऊपर निर्भय करता है कि वह शरीर छोड़ना चाहती है या नहीं।

यदि हम धन प्राप्त करना चाहें तो ध्यान द्वारा ही यह सम्भव है अपने मन की एकाग्रता से हम सब कुछ पा सकते हैं। एकाग्रता होने से समाधि में जा सकते हैं जिस के द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं।

कहने का सीधा–सीधा मतलब यह है कि ध्यान अध्यात्मिक उपलब्धि का कारण है और सांसारिक उपलब्धि का भी।

प्रणाम जी

विद्यार्थी बृजेश निजानन्दी

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ,

सरसावा

असन्तोष

यदि मैं आप से कहूँ कि आप अपने शत्रुओं की एक लिस्ट बनाएं तो आप शायद पांच–दस व्यक्तियों का नाम गिना देंगे। लेकिन जिन शत्रुओं की मैं बात कर रहा हूँ, वे हमारे मन में छुपे हुए हैं। मसलन काम, क्रोध, मोह लोभ और है असन्तोष। असंतोष हमारा सब शत्रुओं से प्रबल है। जिन लोगों की भोगवृत्ति होती है, वे ही सबसे अधिक असंतोषी होते हैं। इस बीमारी के शिकार लोगों को जितनी भी मात्रा में माल मिल जाय, वे भूखे के भूखे ही रहते हैं। और मिले, और मिले, इसी मन्त्र को जपते रहते हैं। ऐसे लोग जीवन में सफल होने के बावजूद भी सदा दुःखी रहते हैं, क्योंकि उनकी तृष्णा कभी मरती नहीं, यही अभाव उन्हें चैन से जीने नहीं देता।

सौ है तो हजार हो जाए। हजार है तो लाख हो जाए यदि लाख है तो करोड़ की तमन्ना है। करोड़ है तो अरबपति क्यों न हो जाएं। फलां के पास इतना है तो मेरे पास उससे भी अधिक होना चाहिए।

यदि कोइ पद मिल गया तो, अब इससे और बड़ा पद हो। स्कूटर है तो कार होनी चाहिए। कार है तो बढ़िया ब्रांड की हो, मारूति नहीं, फोर्ड़ नहीं, कम से कम मर्सडीज होनी ही चाहिए न। ज्यों–ज्यों चीज़ें बढ़ती जाती हैं और दुःख भी उतनी मात्रा में बढ़ता जाता है।

जीवन में यदि आनन्द लेना चाहते हो तो जीवन से असंतोष नामक इस शत्रु को

निकालिए। यह असंतोष मनुष्य को न जीने देता है और न मरने। कभी आप ने देखा है कि एक करोड़पति की अपेक्षा एक मजदूर चैन की नींद सोता है जबकि करोड़पति नींद की गोली लेकर सोता है। कई लोग ऐसे देखे गए हैं, जिन के पास परमात्मा का दिया सभी कुछ है, सम्पत्ति है, बंगला है, कार है, मगर उनकी शक्लें यदि आप देखें तो उन पर तरस आता है। ऐसा लगता है कि उन्हें मुस्काए एक लम्बा अर्सा हो गया है। या उनके भाग्य में मुसकान लिखी नहीं। अभाव का ही रोना रोएंगे। अपनी धन–सम्पत्ति की हवस को पूरा करने के लिए न जाने वे कितने नैतिक–अनैतिक सिद्धान्तों का प्रयोग करेंगे। जो धन उनके पास है, उसका आनन्द उठाए बिना रोते–कलपते इस संसार से कूच कर जाते हैं।

We look before and after and pined for what is not.

जरा सोचिए– पाप करते हैं अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए, जबकि यह भी गारंटी नहीं कि उनका बेटा उनका तर्पण करेगा या नहीं। इस संदर्भ में निम्न दृष्टान्त विचारणीय है।

राजा मीदास की कहानी तो सभी जानते हैं जो चाहता था कि जिस वस्तु को हाथ लगाऊं वह सोना हो जाए। उसका हश्र क्या हुआ ?

इसी प्रकार एक सेठ थे। करोड़ों का कारोबार था मुनीम, नौकर–चाकर भी रखे हुए थे। रोज सुबह उठकर परमात्मा से यही विनती करते कि हे प्रभु! मेरा व्यापार और बढ़ा दो। एक दिन उसने अपने मुनीम से कहा कि हिसाब लगाकर बताओ कि जितना पैसा मेरे पास है, वह आने वाली कितनी पीढ़ियों के लिए पर्याप्त होगा ?

मुनीम ने हिसाब लगाकर बताया कि दस पीढ़ियों तक चल जाएगा। बस यह सुनते ही सेठ जी मूर्छित होकर गिर गए। मुनीम ने बड़े प्रयत्न से उसके मुख पर पानी के छींटे मारकर होश में लाया। सेठ ज्योंही अपनी मूर्च्छा से उठे और बोले , ''मुनीम जी! ग्यारहवीं का के बनसी ?इसका कोई इलाज करो।''

मुनीम जी ने कहा कि यहाँ एक ब्राह्मण रहते हैं, उनके पास चलते हैं, शायद कोई राह सुझाएं। सेठ जी और मुनीम जी दोनों ब्राह्मण की कुटिया में जा पहुँचे। ब्राह्मण ने घर आए नारायण की तरह उनका आवभगत और सत्कार किया। ब्राह्मण ने ब्राह्मणी से कहा कि अतिथियों के लिए खाना आदि बनाओ। छोटी सी कुटिया थी, ब्राह्मणी वहीं खाना बनाने लगी सेठ जी ने देखा कि हांडी में जितना आटा था वह सारे का सारा गूंथ लिया और बड़े ही प्रेमपूर्वक खाना परोसा।

सेठ, मुनीम और ब्राह्मण ने खाना खाया। उसके बाद ब्राह्मणी ने भी बचा खुचा खा लिया। सेठ जी ने ब्राह्मण से कहा कि मैं अपनी एक समस्या लेकर आया हूँ, किन्तु इससे पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप सुबह क्या खाएंगे ?आपकी पत्नी ने तो सारा

आटा गूंथकर हमें खिला दिया है।

सेठ की बात सुनकर ब्राह्मण देव हंस पड़े और बोले, ''इस समय आप आराम करें, आपके प्रश्न का उत्तर सुबह दूंगा और कल आपकी समस्या पर भी विचार करेंगे।''

सब सो गए। सुबह सेठ उठा तब तक मुनीम और ब्राह्मण उठकर नहा चुके थे। देर से उठने के विषय में सेठ ने कहा–''मैं सारी रात इस विचार से सो न सका कि सुबह आप क्या खाएंगे, इसलिए देर से जाग पाया हूँ।''

ब्राह्मण देव कोई उत्तर देते, उससे पहले ही एक गाड़ी वहां आकर रूकी। उसमें से जिमीदारिन उतरी। उनके पीछे हाथों में थाल लिए हुए उनके नौकर थे। जिमीदारिन ब्राह्मण के पास आकर बोली, ब्राह्मण देव! बच्चे का आज जन्मदिन है, इसलिए आपके लिए भोजन लाई हूँ। इसे ग्रहण कर बच्चे को आशीर्वाद दीजिए।''

ब्राह्मण ने भोजन स्वीकार किया, बच्चे को आशीर्वाद दिया और जिमीदारिन चली गईं। तब ब्राह्मण ने सेठ से कहा, '' सेठजी! आपके रात वाले सवाल का उत्तर मैंने इसलिए नहीं दिया था कि मैं स्वयं ही नहीं जानता था कि सुबह हमारे भाग्य में कैसा भोजन है, यह तो सब परमात्मा ही जानता था, अब आपका उत्तर प्रस्तुत है कि हम आज पकवान खाएंगे।''

यह सुनकर सेठ, मन में बड़ा लज्जित हुआ और अपने आपको कोसने लगा कि मैं कितना मूर्ख हूँ जो ग्यारहवीं पीढ़ी की चिन्ता में मरा जा रहा हूँ, ब्राह्मण को तो अगले अर्थात् दूसरे समय के भोजन की चिन्ता नहीं। ब्राह्मण फिर बोले– ''सेठ जी! चिन्ता वे करते हैं, जिन्हें परमात्मा पर विश्वास नहीं है। जिन्हें अपने इष्ट पर अपने सद्गुरू पर भरोसा नहीं होता है वे कल की चिन्ता करते हैं। यदि हमारे भाग्य में भोजन है तो वह अवश्य मिलेगा, और यदि नहीं तो आगे रखी पकवानों से भरी थाली छिन जाती है। सब अपने–अपने भाग्य का खाते हैं और भोगते हैं।''

ब्राह्मण से विदा लेने के बाद सेठ जी का जीवन ही बदल गया। सेठ जी का जीवन सन्तोष, खुशी और प्रसन्नता से भर गया। इसलिए कहा है–

गोधन गजधन बाजी धन और रतन धन खान।

जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।।

जिस विध राखे सांईयां, तिस विध रहिए।

इसी में हमारी भलाई है।

प्रणाम जी

अमरलाल सेठी
अबोहर
09463233945

सूचना

जिन–जिन सुन्दरसाथ के पास 100–100 रुपये वाली रसीद बुक है, सभी सुन्दरसाथ होली के कार्यक्रम पर उसकी न्यौछावर लेकर आने का कष्ट करें। क्योंकि ज्ञानपीठ को अपनी योजनाओं के लिये धनराशि की अत्यन्त आवश्यक है।

विनम्र निवेदन

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी! वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में शिक्षण, साहित्यिक एवं निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने इन कार्यों के लिए अपनी सेवाएं लिखवायी है या स्वतः उनके मन में सेवा करने की इच्छा है, कृपया वे इन खातों में धनराशि भेजने का कष्ट करें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि जिस सेवा की धनराशि भेजी जा रही है, मात्र उसी खाते की C.B.S.A/C संख्या में भेजें।

प्रणाम जी

सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया

1. खाता धारक का नाम–श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रष्ट
   खाता संख्या–3290805513
2. खाता धारक का नाम–श्री ज्ञानपीठ प्रकाशन
   खाता संख्या– 3290804553

पता–शाखा–सरसावा, सहारनपुर उ. प्र.
247232
MICR-Code" 247016005
IFSC CODE-CBIN0282531

सामान्य खाता संख्या	साहित्य खाता संख्या	भवन निर्माण खाता संख्या
1335000100111916	1335000100118751	30172448340
पंजाब नेशनल बैंक	पंजाब नेशनल बैंक	भारतीय स्टेट बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ. प्र.	सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.	(11439) सरसावा, सहारनपुर
RTGS/NEFT IFS	RTGS/NEFT IFS	उत्तर प्रदेश, पिन– 247232
CODE - PUNB0133500	CODE - PUNB0133500	IFS CODE - SBIN0011439

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा से प्रकाशित साहित्यों की सूची

क्र. स.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	किरंतन टीका	300.00
2.	खिलवत टीका	150.00
3.	सागर टीका	170.00
4.	श्रृंगार टीका	300.00
5.	सिन्धी टीका	150.00
6.	परिक्रमा टीका	275.00
7.	परिक्रमा टीका (अंग्रजी)	350.00
8.	विद्वत्दमनी	200.00
9.	धाम सुषमा	60.00
10.	पटदर्शन	200.00
11.	दोपहर का सूरज (हिन्दी)	60.00
12.	दोपहर का सूरज (अंग्रेजी)	80.00
13.	प्रेम का चाँद	65.00
14.	बोध मंजरी (हिन्दी)	15.00
15.	बोध मंजरी (अंग्रेजी)	15.00
16.	बोध मंजरी (नेपाली)	30.00
17.	ज्ञान मंजूषा	20.00
18.	हमारी रहनी	50.00
19.	अमृत बिन्दु	10.00
20.	सत्यांजलि	40.00
21.	बाल युवा संस्कार	10.00
22.	संस्कार पद्धति	15.00
23.	निजानन्द चित्रकथा	30.00
24.	चितवनी	05.00
25.	चितवनी नक्शा	30.00
26.	नित्य पाठ (चौपाई)	15.00
27.	नित्य पाठ (बीतक)	05.00
28.	मेहर सागर	10.00
29.	श्रृंगार के मोती	15.00
30.	सागर के मोती	10.00
31.	अनमोल मोती	05.00
32.	स्वास्थ्य के प्रहरी	30.00
33.	अनमोल मोती तफसीरे हुसैनी	50.00
34.	जामिल–ए–मारिफल	30.00
35.	फरमान	30.00
36.	बुलंद मुकदमा बड़ा मसौदा	40.00
37.	शब–ए–मेअराज	15.00
38.	शेख जी मीर जी का बयान	20.00
39.	Supreme Truth God	20.00
40.	सी. डी., डी. वी. डी. तथा एम. पी थ्री. (गायन एवं चर्चा)	
41.	जागो और जगाओ	100.00
42.	निजानन्द योग	60.00
43.	ब्रह्मवाणी चर्चा	40.00
44.	सेवा पूजा	30.00
45.	मुख्तार–ए–हिंद	20.00
46.	Nijanand School	120.00
47.	श्री मुखवाणी संगीत (राग सहित)	150.00
48.	प्रश्नमाला	05.00
49.	प्राणनाथ महिमा (हिन्दी)	20.00
50.	प्राणनाथ महिमा (गुजराती)	20.00
51.	बोध मंजरी (गुजराती)	15.00
52.	सिनगार (गुजराती)	300.00
53.	सागर (गुजराती)	170.00
54.	चितवनी (गुजराती)	05.00
55.	कैलेंडर	10.00
56.	स्टीकर (प्रणाम जी)	30.00
57.	बड़ा स्टीकर (प्रणाम जी)	125.00
58.	बोध मंजरी (उड़ीया)	15.00
59.	श्री मुखवाणी संगीत	60.00

सप्रेम प्रणाम

1. यदि परब्रह्म के प्रति अटूट श्रद्धा और विश्वास है, तो असम्भव से लगने वाले कार्य भी सम्भव हो जाते हैं, किन्तु श्रद्धा और विश्वास की यह अनमोल सम्पदा किसी विरले को ही मिलती है।

2. पूर्ण ब्रह्म ने इस स्वरूप को अपने से भी बड़ी शोभा दे दी क्योंकि परमधाम में भी पांचों शक्तियां एक जगह लीला नहीं करती हैं, किन्तु महामति जी के धाम हृदय में पांचों ने एक साथ लीला की है। अब तक असंख्यों ब्रह्माण्ड बन गये हैं और भविष्य में भी बनेंगे किन्तु श्री प्राणनाथ जी की महिमा के बराबर अब तक न तो किसी की महिमा हुई है न वर्तमान में है और न भविष्य में होगी।

BOOK POST

प्रकाशक
पू. श्री राजन स्वामी जी

सम्पादक
श्री एस. पी. आर्य
भूतपूर्व आई. ए. एस.
एवं प्रभाकर
मो. 9719795348

तारतम मंजरी पत्रिका के स्वामी
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट, सरसावा
जिला–सहारनपूर, दूरभाष–01331–246000
अवतरित न होने पर कृपया इस पते पर लौटाये।
धन्यवाद

प्रकाशन कार्यालय
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा, नकुड़ रोड, जिला–सहारनपुर (उ.प्र.).
पिन कोड–247232

सेवा में,